आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 6/अंक 1/मार्च 2026

Received: 12/03/2026; Accepted: 17/03/2026; Published: 28/03/2026

लेख

“सृजन में चुपके से आ जाता है बचपन”

- मुक्ता

मुक्ता, सृजन में चुपके से आ जाता है बचपन, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 6/अंक 1/मार्च 2026**,(140 -151)

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

बचपन कभी समाप्त नहीं होता। हम बार – बार बचपन की ओर लौटते हैं। यह क्रम जीवन पर्यन्त चलता रहता है। जीवन के सबसे सुंदर पल वही होते हैं जब हमारे अंदर का शिशु चहारदीवारियों के बावजूद बाहर झाँकने लगता है। वह क्षण हमें ऊर्जा से अनुप्राणित कर आगे बढ़ने का बल देता है। काल से होड़ लेने की जिजीविषा प्रदान करता है।

मेरा बचपन कई शहरों में बीता। उन शहरों की बोली , व्यवहार सभी विविधता लिये हुए थे। समान होते हुए भी भिन्न थे। मेरा जन्म मथुरा में हुआ लेकिन पिता पश्चिम उत्तर प्रदेश में कम रहे। वह उत्तर प्रदेश की न्यायिक सेवा में थे और अधिकतर पूर्वी उत्तर प्रदेश के जिलों में ही रहे। पिता ज्ञानदत्त चतुर्वेदी बस्ती जिले के निवासी थे। माँ बनारस की। बाद में पिता जी ने स्थायी निवास मेरे और भाई मंजीत चतुर्वेदी के आग्रह पर बनारस में ही बनवाया , वैसे उनका लगाव इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ने के कारण इलाहाबाद से था और वह इलाहाबाद में बसना चाहते थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की अपनी कक्षाएं अनेकों बार उन्होने हम लोगों को बड़े चाव से दिखाई थीं और हरिवंशराय बच्चन जो उनके अँग्रेजी के शिक्षक थे , की तेजी बच्चन के साथ विवाह के विवरण भी सुनाये थे।

मेरे आगे साफ चित्र बलिया के हैं जहां पापा मुंसिफ थे। माँ ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी एम. ए. प्रथम श्रेणी में द्वितीय सर्वोच्च स्थान के साथ प्राप्त किया था। वह हजारी प्रसाद द्विवेदी की शिष्या थीं। मेरा नाम ‘ मुक्ता ‘ भी द्विवेदी जी का ही रखा हुआ है। मथुरा में मेरे जन्म के समय वह ‘ किशोरी रमण बालिका इंटर कॉलेज ‘ में अध्यापन कर रही थीं। पापा का स्थानांतरण देवरिया हो जाने के कारण वह नौकरी छोड़कर देवरिया आ गईं। कुछ वर्षों बाद पापा का बलिया स्थानांतरण हुआ। बलिया में अपने गुरु

सीताराम चतुर्वेदी के सुझाव पर माँ टाउन डिग्री कॉलेज से बी. एड. करने लगीं । काशी के सुविख्यात विद्वान सीताराम चतुर्वेदी उस समय बलिया के ' टाउन डिग्री कॉलेज ' में प्रिन्सिपल थे । मेरी अवस्था लगभग पाँच – छः वर्ष की थी । मैं अक्सर माँ के साथ उनके कॉलेज जाती थी , चपरासी मेरी देखभाल के लिये रहता था । अक्सर वह कचहरी चला जाता था । मैं सबकी चहेती थी । पूरी कक्षा में घूमा करती थी , फिर शांत होकर पीछे वाली बेंच पर बैठ जाती थी जहाँ सीताराम चतुर्वेदी के पुत्र धर्मशील चतुर्वेदी बैठा करते थे । वह विनोदी स्वभाव के थे । कभी – कभी मेरी उंगली पकड़ कर वह गेट से बाहर चाकलेट भी दिलवा देते थे । मैं उनसे हिली हुई थी । अक्सर मैं बैच पर बैठकर सामने की मेज पर कागज रखकर पेंसिल से आड़ी – तिरछी रेखाएँ और आकृतियाँ बनाया करती थी । माँ की वाक शक्ति अद्भुत थी । माँ के कॉलेज में वार्षिकोत्सव की तैयारियां चल रही थीं । माँ को शतरंज के खिलाड़ी , प्रेमचंद की कहानी पर रूपांतरित नाटक में बेगम का पात्र निभाते हुए नवाब बने धर्मशील चतुर्वेदी को पर्दे के पीछे से फटकारना था । प्रधानाचार्य सीताराम चतुर्वेदी स्वयं रंगमंच मंन पारंगत नाट्य गुरु थे और निर्देशन भी वही कर रहे थे । घंटों मैं चुप बैठी रिहर्सल देखा करती थी । नाटक के मंचन के दिन रात में मैं दर्शक दीर्घा में पापा के साथ थी । मम्मी की आवाज नेपथ्य से गूंज रही थी । किसी ने कौतूहल से पूछा " यह आवाज किसकी है ?" मैं ज़ोर से बोल पड़ी " मेरी मम्मी डांट रही हैं " पूरी भीड़ अचरज से मुझे देखने लगी ।

मेरी माँ कुसुम चतुर्वेदी अपनी आवाज की बुलन्दी , अनुशासनप्रियता और दृढ़ व्यक्तित्व के लिए प्रसिद्ध थीं । वह उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग में पहली महिला उप-निदेशक बनीं और उन्होने इलाहाबाद से अवकाश ग्रहण किया था । साहित्य में उनके अवदान स्मरणीय हैं । सीताराम चतुर्वेदी के पुत्र धर्मशील चतुर्वेदी बनारस में अधिवक्ता थे साथ ही प्रसिद्ध हास्य व्यंग्य कवि के रूप में तथा काशी पर शोधपूर्ण निबंधों के लिए जाने जाते हैं । धर्मशील मामा बलिया के प्रकरण भूल चुके थे केवल मेरी बाल छवि उनके मन में थी । मेरे याद दिलाने पर ठहाका मार कर हँसते थे । सन 1993 में मैंने ' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ' फिल्म का निर्माण दूरदर्शन के राष्ट्रीय नेटवर्क के लिए किया था । सीताराम चतुर्वेदी जी आचार्य शुक्ल के शिष्य थे । उस समय सन्यस्त भाव से मुजफ्फरपुर के एक आश्रम में रह रहे थे । माँ के साथ मुझे देखकर उनकी पुरानी स्मृतियाँ जागृत हो उठीं । बड़े प्रेम और वात्सल्य से उन्होने हमारा सत्कार किया । मैंने फिल्म के लिए उनका साक्षात्कार लिया । मधुर स्मृतियों से ओत-प्रोत हो हम वापस लौटे ।

लगभग साढ़े छः वर्ष की उम्र में मुझे लिखना पढ़ना सीखने के लिये ' जवाहर सेंटर स्कूल ' भेजा गया । मंजीत भैया वहाँ पहले से ही पढ़ते थे । छोटे से प्राईमरी स्कूल के हेड मास्टर साँवले रंग के दाढ़ी वाले खान साहब थे । उस समय एक ऐसी घटना घटी जो मेरे लिये ही नहीं अपितु बलियावासियों के लिये भी यादगार बन गई । आज भी उस घटना से परिचित लोग मुझे स्मरण दिलाते हैं " याद है तुम बलिया में खो गई थी । " वास्तविकता यह है कि वह घटना मेरी स्मृति में साफ अंकित है । बहुत से प्रश्नों का उत्तर मैं आज भी नहीं ढूंढ पाई हूँ । मैं स्कूल में पढ़ने नहीं खेलने जाती थी । स्कूल के अनुशासन को सीखने के लिए ही मुझे भेजा जाता था । भाई बड़ी कक्षा में पढ़ते थे । मैं पहली कक्षा में बैठ कर खाने की छुट्टी जो बारह बजे होती थी ,

का इंतजार करती थी। चपरासी हम लोगों का टिफिन लेकर आता था। खाना खाने के बाद मैं और मंजीत भैया हेडमास्टर साहब के घर का रुख करते थे। स्कूल से सटा उनका घर था और घर में सफेद खरगोश पले थे। हेड मास्टर खान साहब साँवले रंग के थे उनकी दाढ़ी खिचड़ी सफेद थी। वह हम भाई , बहन को बहुत मानते थे। घंटा बजने पर भाई चले जाते थे , मैं अकेली खेलती थी। उनकी सुंदर सहृदय पत्नी मुझे प्यार करती थीं। अभी शहर में बिजली नहीं आई थी। यह सन साठ के पहले की बात है। सड़क पर लैम्प पोस्ट जलते थे। अक्सर मैं जिद करके पापा से दस पैसे ले लेती थी। स्कूल के बाहर छोटी सी डलिया में इमली बिकती थी। वह दस पैसे मैं इमली वाले को देती थी वह मुझे इमली थमाता था। मुझे याद नहीं कितने दिन यह सिलसिला चला। स्कूल में प्रवेश लिये मुझे लगभग एक महीने बीत चले थे। एक दिन दस बजे स्कूल पहुँचते ही एक गोरा चिट्टा लड़का जो तीसरी कक्षा में पढ़ता था , मेरे सामने आ खड़ा हुआ और बोला " इमली खाओगी ? " मैंने हाँ कहा। उस दिन इमली वाला नहीं आया था। उसने कहा " ढेर सारी इमली खिलाऊँगा लेकिन तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। " " कहाँ " मेरे पूछने पर उसने कहा " जहाँ इमली का पेड़ है - - तुम्हें तोड़ कर खिलाऊँगा। " मैं उसके साथ चल पड़ी। आज मुझे और मेरे परिवार को हैरानी होती है कैसे छः साल की उम्र की सभी बातें फिल्म के दृश्यों जैसी याद है जब कि आज की बहुत सी स्मृतियाँ मानस पटल से ओझल हो चुकी हैं , उन्हें सायास उकेरना पड़ता है। गोल चेहरे , गोरे रंग वाला वह लड़का मुझे शहर से घुमाता गाँव की ओर ले जाने लगा। रास्ते में मलाई बर्फ बेचने वाला मिला। लड़के ने मुझसे पैसे माँगे , मैंने अपनी जमा पूंजी दस पैसे दे दिये। लड़के ने एक पत्ते में मलाई बर्फ लेकर अकेले ही खा लिया। यह बात मुझे नागवार गुजरी। मैं उससे लड़ने लगी " तुमने अकेले खाया पैसे मेरे थे - - मुझे क्यों नहीं दिया ? " वह भी लड़ने लगा। मैं रूआंसी हो उठी। कुछ ही दूरी पर सड़क के किनारे झोपड़ी के पास चारपाई पर दो प्रौढ़ व्यक्ति लुंगी पहने बैठे थे। चेहरे से मुसलमान लग रहे थे। वह लड़का मुझे लेकर उनके पास पहुँचा। वे परिचित थे। उन लोगों ने लड़के से पूछताछ शुरू कर दी। मैंने भी शिकायत की। लड़के को बहुत डांट पड़ी। तुरन्त मुझे स्कूल छोड़ने की हिदायत मिली। हम वापस लौटने लगे तो मैंने उसे इमली की याद दिलाई " तुमने मेरे पैसे ले लिये - - इमली भी नहीं खिलाई - - मैं तुम्हारी शिकायत करूँगी। " वह लड़का मुझे डर कर दीवानी कचहरी ले आया। वहाँ इमली के ढेर सारे पेड़ थे। खूब लंबी – लंबी कच्ची इमलियाँ लटक रही थीं। इमली देखकर मैं खुश हो गई मुझे यह भी ध्यान नहीं आया कि मैं अपने पापा की कचहरी में ही खड़ी हूँ , उसी टेनिस कोर्ट के पास जहां शाम को कचहरी बन्द होने के बाद पापा टेनिस खेला करते हैं। कई बार मैं पापा के साथ उनकी कचहरी भी चली जाती थी फिर शाम को उनकी साइकिल के आगे बैठ कर घर आती थी। वह लड़का पूरी ताकत से ढेले मार – मार कर इमलियाँ तोड़ रहा था मैं मगन होकर इमलियाँ बीन रही थी। उसने इमलियाँ बटोरी और मेरी ओर बढ़ाई। मुझे अपने हाथ इमलियों के लिये कम लगे मैंने अपनी फ्राक को आगे से थैला नुमा मोड़ा और इमलियाँ भर लीं। हम दोनों साथ – साथ चौराहे तक आए। फिर उसने कहा " तुम जाओ। " एक ओर इशारा करके दिखाया " वह स्कूल है वहीं जाना। " मैंने उससे साथ चलने के लिये कहा लेकिन वह न माना। मुझे अकेली छोड़कर वह चला गया। चौराहे की भीड़ के बीच से मैं आगे बढ़ने लगी तभी भाई के मास्टर जिनका नाम राम जी पाण्डेय था वे मेरे करीब आ गए ,

मेरे गुम होने की खबर पूरे शहर में फैल चुकी थी। मास्टर जी भी मुझे ही ढूंढ रहे थे। उन्होने मुझे साइकिल के आगे वाले हत्थे पर बैठने को कहा क्योंकि मैं बहुत छोटी थी और इमली फेंकने का आदेश दिया। मैंने इंकार कर दिया। इमली मेरे लिये किसी अलादीन के चिराग से कम नहीं थी। उन्होने फ्राक से इमली एक झोले में डालने को कहा जो उनके कैरियर पर लटका था। मैं मान गई। इमली सहित मुझे बैठाकर वह साइकिल से कुछ दूर ही पहुंचे थे कि मेरे पापा मम्मी रिक्शे से आते दिखाई दिये। पुलिस ने पूरे शहर की नाकेबंदी कर रखी थी। पापा मम्मी मुझे ढूँढने रिक्शे से निकले थे। मुझे देखते ही मम्मी ने लपक कर मुझे लिपटा लिया। दोनों रो रहे थे। मम्मी , पापा को पहली बार मैंने रोते देखा था। मैं पूछे जा रही थी " तुम लोग क्यों रो रहे हो ?" पापा ने मुझे गोद में बैठा लिया और रिक्शे वाले को मंदिर की ओर चलने का इशारा किया। मेरी दृष्टि इमली पर टिकी थी। मास्टर जी ने इमली वाला झोला मुझे थमा दिया था। इस घटना के बाद मेरा स्कूल जाना बन्द हो गया। मास्टर जी घर पर ही मुझे पढ़ाने लगे। लड़के का गरीब मुसलमान परिवार भय के कारण शहर छोड़ कर चला गया। पापा मम्मी को बराबर उस परिवार की चिंता थी आखिर उन्होने पता लगवा कर उन्हें वापस बुलवाया। मैं स्कूल नहीं जाती थी लेकिन मैं मंजीत भैया के साथ कभी – कभी हेड मास्टर साहब के घर खरगोश से खेलने जरूर जाती थी। कुछ महीने बाद ही पापा का तबादला गोंडा हो गया। मम्मी ने बी. एच. यू. में लेक्चरर पद पर पदभार ग्रहण किया। मैं एनी बेसेंट थियोसोफिकल स्कूल के प्रायमरी सेक्शन में पढ़ने लगी। यहाँ बच्चों को सुबह की कक्षा में तकली से सूत कातना सिखाया जाता था। न मुझसे तकली चलती थी न सूत कतता था। मेरा मन नहीं लगता था। स्कूल के बाद में सीनियर क्लासेज में भरतनाट्यम के गुरु चन्द्रशेखर जी के पास बैठ कर उन्हें नृत्य सिखाते हुए देखा करती थी और नृत्य सीखने की जिद करती थी। वह कहते थे थोड़ा बड़ी हो जाओ तब सिखाऊँगा। माँ के सहकर्मियों में मुझे मधुरिमा आँटी और चन्द्रशेखर जी विशेष प्रिय थे। चन्द्रशेखर जी को अंकल सम्बोधन मुझे कभी नहीं जंचा। सम्बोधन हीन होने के बावजूद बहुत समय तक वह मेरे प्रिय हीरो थे। छात्राओं के साथ मिर्जापुर की ' विन्ढम फाल ' ट्रिप में भी मैं माँ से अधिक उनके साथ बनी रही। चालीस वर्ष बाद बनारस में मैं पुनः चन्द्रशेखर जी से मिली। भरतनाट्यम के गुरु के रूप में वह पूरे भारत एवं विदेशों में भी विख्यात हो चुके थे। मुझे उनका आशीर्वाद प्राप्त हुआ। मैंने उन्हें बताया मुझे भरतनाट्यम सिखाने वाला गुरु न मिला लेकिन कथक में मैंने प्रवीण किया। दुर्लभ गुरुओं में फैजाबाद में पं. कामता प्रसाद मिश्र एवं बनारस में पं. नन्द किशोर मिश्र का सानिध्य मुझे प्राप्त हुआ , लेकिन अपनी बेटी पारमिता को मैंने भरतनाट्यम सिखाया।

एनी बेसेंट थिओसोफिकल स्कूल में ही एक दिन स्कूल की छुट्टी के बाद मैं शौचालय में थी किसी बच्चे ने बाहर से कुंडी लगा दी। लगभग बीस मिनट मैं दहशत में चिल्लाती रही फिर किसी ने आवाज सुनकर कुंडी खोली। मम्मी इस घटना से घबड़ा गई थीं। अब बनारस के भदैनी मोहल्ले के एक छोटे से स्कूल में मेरा दाखिला कराया गया। मैं अपनी माँ के साथ ' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निवास ' में रहती थी। मेरी माँ कुसुम चतुर्वेदी आचार्य शुक्ल के कनिष्ठ पुत्र गोकुल चंद्र शुक्ल की पुत्री थीं। मेरे नाना गोकुल चंद्र शुक्ल प्रधानाचार्य थे और अधिकतर समय वह देवरिया की मझौली तहसील में रहे। उस समय भी वह वहीं थे। बेलवरिया मोहल्ला स्थित कोठी में ऊपर के हिस्से में मैं माँ के साथ रहती थी। नीचे दो जैन परिवार किरायेदार थे। इसी मोहल्ले का नाम बाद में रवीन्द्रपुरी हुआ। भदैनी के स्कूल में जैन साहब के बेटे दिनेश

जैन के साथ मैं भी स्कूल जाने लगी। हमारी कक्षा दो मंजिले पर थी। पूरे समय ऊपर से ठक – ठक आवाज आती थी। हम बच्चों को ऊपर जाने से रोका जाता था। मैं कहाँ मानने वाली थी ? एक दिन मैं सबकी नजर बचा कर ऊपर पहुँच गई। सिल की तरह की एक पटिया पर बड़े सलीके से लाइन में बैठे लोग कुछ कूट रहे थे। अधिकतर चारखाने की लुंगी पहने मुसलमान कारीगर थे। मुझे देखकर उन्होने काम रोक दिया। मेरे पूछने पर कि आप लोग क्या कर रहे हैं उन्होने बताया चाँदी की वर्क बना रहे हैं जो मिठाई पर लगाया जाता है। कैसे बनाया जाता है यह भी समझाया। उनकी उँगलियाँ ऐसे दौड़ रही थीं जैसे सितार के तार छेड़ रही हों। मेरे घर के सामने भी सुबह मुसलमान कारीगर पहुँच जाते थे। सड़क के किनारे बनारसी साड़ी का ताना बाना छः मीटर की लम्बाई तक वही सँवारा जाता था। पहले लकड़ी की तख्त जितनी ऊँचाई पर पाये गाड़े जाते थे फिर रेशम के धागे से ताना कसा जाता था। छुट्टी के दिन मेरा लगभग पूरा दिन उनके साथ बीतता था। जिस दिन वे लोग नहीं आते थे मुझे बहुत सूना लगता था। दिनेश को इन सब बातों में रुचि नहीं थी वह अपने में ही सिमटा रहने वाला लड़का था। लगभग रोज ही उससे मेरा झगड़ा होता था। वह स्कूल में सबसे कहता " यह मेरे किराएदार की लड़की है। " यह बात मुझे नागवार गुजरती थी। मैं चिल्लाकर सबको बताती " नहीं मैं मकान मालिक हूँ , यह किराएदार। " मेरी कक्षा में ज्यादातर लड़के थे सब उसी की बात को सच मानते थे। घर में जब यह बात पता चली तो मम्मी ने समझाया ' जाने दो , उसे कहने दो , तुम्हीं किराएदार बन जाओ , क्या फर्क पड़ता है ? ' मैं मानने वाली नहीं थी। उसकी माँ से मैंने शिकायत की। दिनेश झूठ बोल गया " मैंने ऐसा नहीं कहा।" मैंने दिनेश से बोलना छोड़ दिया था। हम लोग साथ जाते साथ आते लेकिन बात नहीं करते थे। दिनेश की माँ मुझे बहुत मानती थीं। सूरज डूबने से पहले वो लोग भोजन कर लेते थे। एक दिन उन्होने बुलाया और दिनेश के साथ बैठकर गरम – गरम पराँठे खिलाये और हमारी सुलह कराई।

माँ के पितामह आचार्य शुक्ल को प्रकृति से बहुत लगाव था। मथुरा से कदम और करील के पौधे लाकर उन्होने बगीचे में लगाए थे। उस समय पूरे मोहल्ले में गिने चुने घर थे। बेल , नींबू , जामुन का घना जंगल था कंकडीली सड़क पर गिने चुने आदमी दिखाई देते थे। बिजली नहीं थी। शाम होते ही सन्नाटा हो जाता था। हमारी कोठी के चारों ओर जामुन , सहजन , आम , केला , अंजीर , कदम और करील के पेड़ थे। अपने मौसम में जामुन और कदम जमीन पर बिछ जाते थे। फूलों के भी अनगिनत पेड़ थे। बीच – बीच में मेरी नानी चंद्रावती शुक्ल आकर कोठी की देखभाल करती थीं। आचार्य शुक्ल के हाथों रोपा गया कदम का पेड़ बहुत बड़ा और घना था। पेड़ के नीचे पत्थर की बड़ी तख्त नुमा चौकियाँ लगी थीं। पूरे बगीचे में कई चौकियाँ थीं जिन्हें विशेष रूप से शुक्ल जी ने लगवाया था। इन चौकियों पर शाम को बैठकर अतिथियों से वार्तालाप करना उन्हें पसंद था। पहले शुक्ल जी तीसरी मंजिल के ऊपर हालनुमा कमरे में रहा करते थे। वहीं उनका पुस्तकालय था। मैं माँ के साथ उसी कमरे में रहा करती थी बाद में हमलोग बगल वाले कमरे में आ गए जो मुझे बहुत प्रिय था। उस कमरे की राजस्थानी शैली वाले छज्जे की बालकनी में मैं अपनी गुड़िया के साथ कभी – कभी खेला करती थी जिसे मैंने बलिया के ददरी मेले से खरीदा था। कोठी का नक्शा आचार्य शुक्ल ने स्वयं बनवाया था। दूरदर्शन के लिए निर्मित अपनी फिल्म " आचार्य रामचंद शुक्ल " में मैंने

इस कोठी को प्रमुखता से दिखाया है और ' आचार्य रामचंद शुक्ल ' जीवनी में सभी तथ्यों का उल्लेख किया है।

मम्मी ने परिवार के लिए समझौता किया और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़ कर गोंडा में राजकीय बालिका इंटर कॉलेज में वाइस प्रिन्सिपल नियुक्त हुईं। इस बीच गोरखपुर में कान्वोकेंशन हुआ जहां माँ को बी. एड. की डिग्री मिलने वाली थी। मुख्य अतिथि डॉ. राधाकृष्णन थे। जब मम्मी बी. एच. यू. में एम. ए. कर रही थीं डॉ. राधाकृष्णन वाइस चांसलर थे। माँ मालवीय भवन में उनके गीता पर लेक्चर सुनने जाती थीं और प्रश्न किया करती थीं। वह माँ को मानते थे। गोरखपुर में बड़ी भीड़ का हिस्सा थे मैं और मेरी माँ। डॉ राधाकृष्णन पूरे ताम झाम के साथ आ रहे थे , माँ को देख ठिठक गए , मेरे गाल को थपथपा कर बोले " इज शी योर डॉटर ?" माँ ने ' यस ' कहा। वह माँ से यह बातें करते हुए आगे बढ़ने लगे। फिर तो हम लोग वी. आई. पी. हो गये। हमें प्रथम पंक्ति में बैठाया गया।

अभी तक मेरा विद्यालय जाने का क्रम शुरू नहीं हुआ था। मेरा जिज्ञासु मन स्कूली गणित से कोसों दूर था परीक्षा तक मेरी पढ़ाई पहुंची ही नहीं थी। पापा मम्मी के लिए यह चिंता का कारण था। पापा पहले से ही गोंडा में सिविल जज थे मम्मी के गवर्नमेंट स्कूल में ' वाइस प्रिन्सिपल ' का पद भार ग्रहण करने के बाद मेरा दाखिला ' मिशन स्कूल ' में कराया गया। लिखित और मौखिक परीक्षा के बाद मुझे दूसरी कक्षा के योग्य पाया गया। मेरी विधिवत शिक्षा आरम्भ हुई। यहाँ का माहौल शुरू में आतंकित करने वाला था खासतौर पर प्रिन्सिपल ' मिस वाल्टर्स ' की छड़ी और उनके दोनों तरफ चलने वाले दो अल्शेशियन कुत्ते। जल्दी ही अपनी सुंदर अध्यापिकाओं से मैं घुल मिल गई। मेरी क्लास टीचर बहुत ही सुंदर और मधुर थीं। सभी बच्चे उन्हें मानते थे और अपने ढंग से प्रभावित करने की कोशिश करते थे। आज गोंडा की स्मृतियाँ उद्वेलित करती हैं। गोंडा में मेरा घर चारों ओर से पेड़ों से घिरा था। आम , लीची , बेल , शीशम के बड़े बगीचे के अंदर घर था। वहाँ एक उल्लेखनीय घटना और घटी थी। उस समय नेहरू जी देश के प्रधान मंत्री थे। मेरे घर के पास पुलिस लाइन में ही उनकी सभा आयोजित थी। राजनीति के ककहरे से दूर मुझे इतना पता था कि चाचा नेहरू बच्चों को बहुत प्यार कराते हैं और गुलाब का फूल उन्हें पसंद है। फोटो में उनकी शेरवानी में गुलाब का फूल लगा हुआ मैंने देखा था। मैं उन्हें गुलाब का फूल देने के लिए उतावली थी। पापा , मम्मी अन्य अफसरों के साथ सभा में मौजूद थे लेकिन भीड़ इतनी थी कि नेहरू जी तक पहुंचना संभव न था। मेरी जिद देखकर पापा ने एक दारोगा को बुलाकर मुझे नेहरू जी तक पहुँचाने को कहा। दारोगा जी के साथ मैं चल पड़ी। नेहरू जी के पास पहुँचने पर भीड़ बहुत बढ़ गई थी। मैं भीड़ में दब न जाऊँ इस भय से दारोगा जी ने मुझे बाहों में उठाकर ठीक नेहरू जी के सामने खड़ा कर दिया। मैंने गुलाब वाला हाथ बढ़ाया। गुलाब मेरी मुट्ठी में दब डंठल से अलग हो चुका था। नेहरू जी ने हाथ बढ़ाकर गुलाब ले लिया और अपने गले की गुलाब की माला मेरे गले में डाल दी। मेरी खुशी को पर लग गए थे। अनेक वर्षों तक वह सूखी माला मेरे पास सुरक्षित थी।

गोंडा में मेरे मिशन स्कूल की छुट्टी जल्दी हो जाती थी। मम्मी भी राजकीय बालिका इंटर कॉलेज में वाइस प्रिन्सिपल थीं। मंजीत भैया मुझसे चार साल बड़े थे। उनका पूरा बड़े भाई साहब वाला रोब मुझ पर चलता था। उन्होने हिन्द पॉकेट बुक्स से किताबें मंगाकर एक कमरे में लाइब्रेरी बनाई थी। उनकी नजरें

बचाकर मैं लाइब्रेरी में घुस जाती थी और किताबें पढ़कर इतने करीने से रखने की कोशिश करती थी कि उन्हें पता न चले लेकिन अपनी इस असफल चेष्टा में मैं कभी – कभी उनके हाथों मार खा जाती थी। इसके अलावा भी हमारे टकराव के अनेक बिन्दु थे और अक्सर हमें एक दूसरे से दूर रहने की हिदायत मिलती थी लेकिन होता उलटा था खेल के समय हमारी दोस्ती तुरंत हो जाती थी। मेरा प्रिय और सुरक्षित आश्रय स्थल था पापा की कचहरी। पापा की मैं लाड़ली बिटिया थी। पापा मेरी बात टालते न थे। कभी – कभी अपने पास कचहरी में बुला लेते थे। कचहरी की गतिविधियों से मैं भली -भांति परिचित हो गई थी। पापा डायस पर मुकदमा सुन रहे होते थे तो मैं उनके आराम कक्ष में लौंगलता खा रही होती थी। वहाँ मैं दफ्तरी , बाबू , मुहर्रिर और वकीलों के बीच घूमती रहती। पापा के दफ्तरी बहुत ही भले थे। वे मेरे लिए कागज की नाव , चश्मा , रात – दिन और हवाई जहाज बना देते। शाम को मैं पापा के साथ अपने कागज के खिलौनों के साथ वापस लौटती थी। जब गोंडा में पापा की पोस्टिंग हुई कचहरी में बिजली नहीं थी। कचहरी और हमारे घर में भी झालर वाले कपड़े के पंखे टंगे थे जिन्हें खींचने के लिए एक चपरासी की अलग से नियुक्ति थी। मैं भी उनके साथ जमीन में बैठ कर पंखा खींचती थी। इस उपक्रम में मुझे डांट खाना पड़ता था। एक वर्ष बाद बिजली आ गई। मैं चपरासी , दाइयों के बीच पली हूँ। उनके घर- जंवार की अनेक कहानियाँ दिलचस्पी से सुना करती थी। हमारे घर में नियामुतुल्लाह और कौशल साथ – साथ रहा करते थे। बर्तनों का भी कोई भेदभाव नहीं था। इन सभी के अनुभव संसार मेरी कहानियों का हिस्सा बने। मम्मी मुझे घर में नृत्य और गायन सिखाती थीं। हारमोनियम घर में था। स्कूल के समारोह में मैं नृत्य में भाग लेने लगी और जल्दी ही मेरी प्रिन्सिपल मिस वाल्टर्स भी मुझे मानने लगीं। कक्षा में प्रथम तीन स्थानों में मेरा नाम रहता था। इस स्कूल में मेरा परिचय ईसामसीह की करुणा से हुआ। बायबिल की बहुत सी शिक्षाएं मुझे कंठस्थ हो गयीं। बुद्ध , मोहम्मद साहब , राम , कृष्ण की कहानियाँ यहाँ सुनने को मिलीं और इनसे संबन्धित नाटकों का मंचन भी पहली बार यहीं देखा। मेरी रुचि नृत्य में थी। मैं एकल और समूह नृत्य में भाग लेती थी। एक बार मेरी प्रिय क्लास टीचर ' मिस सिंह ' ने स्वयं मेरा मेकअप किया। किसी लोकगीत पर ग्रुप डान्स था। उन्होने मेरे बालों का जूड़ा बनाया और जूड़े को स्थिर रखने के लिए जूड़े की कई पिन लगाई। अभिभावक भी आमंत्रित थे। मेरा कार्यक्रम होने तक रात हो गई। जूड़े की पिन मुझे चुभ रहीं थीं। लेकिन मैं उत्सव के उत्साह में अपना दर्द भूले हुई थी। घर पर जब जूड़ा खोला गया तो पिन सिर के काफी अन्दर तक घुस चुकी थी। घाव से रिस – रिस कर खून फैल कर सूख चुका था। मैं कई दिन स्कूल न जा पाई। घर में तो मुझे पिन चुभने की बात न बताने की डांट पड़ी लेकिन स्कूल पहुँचने पर ' मिस सिंह ' टीचर ने मुझे गले लगा कर प्यार किया। वह बार – बार ' सॉरी ' कह रही थीं। उनकी आँखों में आँसू थे। मुझे मेरा पुरस्कार मिल चुका था प्रिय अध्यापिका के आलिंगन के रूप में। तीन साल तक मैंने वहाँ पढ़ाई की। मैं दुबारा उस स्कूल आज तक नहीं जा पाई। आज भी मिशन स्कूल की स्मृतियाँ उद्वेलित करती हैं।

गोंडा में तीन वर्ष व्यतीत करने के पश्चात पापा का स्थानांतरण आजमगढ़ हो गया। माँ का भी ट्रांस्फर राजकीय बालिका इंटर कॉलेज में वाइस प्रिन्सिपल के पद पर हुआ। मेरा दाखिला प्रायमरी विभाग में पाँचवी कक्षा में हुआ। नृत्य और गायन की शिक्षा के लिये ' हरिऔध कला भवन ' की सायंकालीन

कक्षाओं में दाखिला कराया गया । हरिऔध कला भवन में गायन के गुरु ' गौड़ मास्टर साहब ' थे । दुबले – पतले नाटे कद के अधेड़ मास्टर साहब बहुत परिश्रमी और धुनी व्यक्ति थे । बसंत पंचमी के दिन विद्यालय के साथ साथ उनके गाँव के घर में भी हम सभी बच्चे गायन का कार्यक्रम देने जाते थे । संगीत विद्यालय से लगभग डेढ़ किलोमीटर हम लोग खेतों के बीच से होकर उनके घर जाते थे । स्नेही गौड़ मास्टर साहब बच्चों को प्रसाद के रूप में भरपेट भोजन कराते थे । आजमगढ़ में हम लोग एक वर्ष ही रहे उसी समय हरिऔध कला भवन में बहुत बड़ा कवि सम्मेलन आयोजित हुआ था जिसमें ' महादेवी वर्मा ' आईं थीं । आज भी उनके साथ समूह में मेरा बाल चित्र सुरक्षित है । मैंने वहाँ कथक नृत्य की शिक्षा लेनी आरम्भ की लेकिन यह शिक्षा ततकार एवं कुछ टुकड़ों से आगे न बढ़ी । सन 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध का समय था । कॉलेज में इंटर की लड़कियों को रायफल ट्रेनिंग दी जा रही थी । मम्मी भी ट्रेनिंग में शामिल थीं । मैं बड़ी हसरत से देखा करती थी । रायफल मुझसे कंधे तक न उठाई जाती थी लेकिन सीखने की अदम्य लालसा थी । मम्मी जवानों के लिये स्वेटर बुनतीं और मैं ऊन के गोले बनाया करती । आजमगढ़ रेलवे स्टेशन पर जवानों से मिलने का सौभाग्य मिला । मम्मी के साथ कॉलेज की छात्राएँ थीं । मफलर , टोपी , मोजा , स्वेटर , खाने के व्यंजन आदि जवानों को भेंट किए गये । आज भी याद है जवानों को विदा करते समय हम सबकी आँखें नम थीं और हाथ सैल्यूट कर रहे थे । ' जय जवान , जय किसान ' के नारे चारों ओर गूँज रहे थे । कचहरी से आते ही पापा रेडियो कान से लगा कर बैठ जाते थे और वह दिन भी जब लाल बहादुर शास्त्री के निधन का हृदय विदारक समाचार मिला । ऐसा ही सन्नाटा तब भी छाया जब नेहरू जी के निधन का समाचार मिला था । मैं गर्मियों की छुट्टियों में आचार्य शुक्ल आवास में थी । सभी रो रहे थे ।

आजमगढ़ में मेरे घर के पास ही मेरी प्रिय सहेली विनीता पॉल का घर था । उसकी माँ मुझे बहुत मानती थीं । हम लोग अक्सर साथ खेलते थे । कुछ दिनों से विनीता स्कूल नहीं आ रही थी । मैं भी उसके घर नहीं जा पाई थी । स्कूल में खाने की छुट्टी के बाद एक खबर बिजली की तरह फैल गई । विनीता की माँ का देहान्त हो गया । मैं खुद को रोक न सकी । मेरी माँ बहुत अनुशासनप्रिय थीं । डर के कारण मेरी उनसे पूछने की हिम्मत न हुई । स्कूल की एक तरफ की दीवार थोड़ा टूट गई थी । मैं दीवाल फाँद कर विनीता के घर जा पहुंची जो स्कूल से काफी दूर था । विनीता बाहर आई उसकी आँखों में आँसू थे । मुझे देखते ही एक फीकी मुस्कान उसके होठों पर तैरी और गुम हो गई । मैं चुपचाप भीतर कमरे में जा पहुंची । यह वही कमरा था जहाँ स्नेहमयी आँटी (विनीता की माँ) ने मुझे बड़े दुलार से कितना कुछ खिलाया था । आज वह कॉफिन में लेटी हुई थीं । उनके चेहरे पर अद्‌भुत आभा थी । सभी रो रहे थे । थोड़ी देर मैं मौन खड़ी रही । बाहर आकर थोड़ी दूरी पैदल तय की फिर दौड़ते हुए स्कूल पहुंची यद्यपि मेरा घर विनीता के घर के बगल में था फिर भी मुझे तय समय पर माँ के साथ घर आना होता था और मेरा बस्ता भी कक्षा में था इसीलिए मैं स्कूल पहुंची । समय का अंदाज नहीं था । छुट्टी हो चुकी थी । माँ परेशान थीं । मुझे ढूंढा जा रहा था । बस्ता माँ के पास पहुँच चुका था । मुझे देखते ही चौकीदार ने मेरा हाथ पकड़ा और माँ के सामने खड़ा कर दिया । माँ बहुत गुस्से में थीं । उन्होने पूछा " कहाँ गई थी ? " मैंने साफ बता दिया । मैं भयमुक्त थी । आत्मबल से सराबोर । माँ अवाक मेरा चेहरा देख रहीं थीं । उन्होने मेरा दीवाल फाँद कर जाने का विवरण सुना और बिलकुल शांत स्वर में निर्णय दिया " तुमने बहुत अच्छा किया । " मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ भी मैं कर सकी हूँ उसके पीछे मेरी माँ का ही संबल है । मेरी विदुषी माँ साहस की प्रतिमूर्ति थीं । चौथी

, पाँचवी कक्षा में मुझे प्रथम स्थान मिला था। छठवीं कक्षा में फैजाबाद में मेरा दाखिला कनौसा कानवेंट स्कूल में हुआ। घर में जब भी पापा मम्मी में किसी बात पर बहस होती थी। वे दोनों बच्चों को दुष्प्रभाव से बचाने के लिये अँग्रेजी पर उतर आते थे। मैं प्रसन्न थी कि कानवेंट में अँग्रेजी बोलना सीख जाऊँगी और पापा , मम्मी की हर बात समझ लूँगी। नये स्कूल ड्रेस में पैरों में नया जूता नया बैग और नयी कॉपी किताबों सहित मैं नई नवेली स्कूल पहुँची। यहाँ सहशिक्षा थी लड़के लड़कियाँ साथ पढ़ते थे। अजनबी वातावरण में मैं व्यवस्थित होने का प्रयास कर रही थी कि मेरे बगल वाली लड़की ने हँगामा कर दिया। उसके बैग से कॉपी गायब थी। उसने टीचर से कहा और रोना शुरू कर दिया। टीचर ने सभी बच्चों के बैग की तलाशी कि घोषणा कर दी। तलाशी के बाद भी कॉपी नहीं मिली। टीचर ने अन्त में निष्कर्ष निकाला कॉपी घर पर छूट गई होगी। इस घटना का मेरे मानस पटल पर गहरा असर हुआ मैंने उस स्कूल में पढ़ने से इन्कार कर दिया। मेरी माँ गवर्नमेंट नार्मल स्कूल की प्रिन्सिपल थीं। कानवेंट की प्रिन्सिपल ने टीचर को मेरे घर मुझे मनाने के लिए भेजा , मम्मी ने भी समझाया फैजाबाद का सबसे अच्छा स्कूल है तुम्हें फिर साधारण स्कूल में ही पढ़ना होगा। लेकिन मैं जिद पर अड़ी रही। अब मेरा दाखिला माँ के नार्मल स्कूल में हुआ , यहाँ बी. टी. सी. की ट्रेनिंग के लिए मॉडल स्कूल था जहाँ आठवीं तक पढ़ाई होती थी और आठवीं की बोर्ड की परीक्षा होती थी। स्कूल में मध्यम और निम्न मध्यम वर्ग की लड़कियाँ पढ़ती थीं। इस स्कूल ने मेरे अनुभवों को बहुत समृद्ध किया और हर तबके की कठिनाइयों को समझने की दृष्टि मुझे वहाँ मिली। फैजाबाद एक ऐसा शहर है जहाँ मेरे अंदर सृजन की शाखाओं में कोपलें उगने लगीं। मैंने कवितायें लिखना शुरू किया। कुछ पेंटिंग भी बनाईं। एक बूढ़े आदमी का पेंसिल स्केच बनाया जो सबको पसंद आया। मैंने चलना और नृत्य करना साथ ही सीखा था।

जिन दिनों मैं कथक नृत्य में खोई रहती थी और चंदामामा पढ़ते हुए विक्रम और बेताल के रहस्यलोक में गुम हो जाती थी मेरी माँ ने मुझे ' गोदान ' थमा दिया। इतनी मोटी किताब देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गये। मेरी दशा देखकर और पिता के बीच बचाव करने के फलस्वरूप पाँच पेज प्रतिदिन की उदारता रखी गई। करीब पचास पेज तक मैंने इस सजा को नियम से भोगा। प्रतिदिन पाँच पेज का कथानक माँ को सुनाया फिर मेरी दशा भी बड़े भाई वाली हो गई। न खेलने की सुध न खाने की। गोदान पढ़ते हुए मुझे बार – बार क्रोध आ रहा था , कान की लौ गरम हो जा रही थी , बदन पर चींटियाँ सी रेंगने लगतीं। आस – पास सब एक अजीब सी गंध से भरा महसूस होता। धनिया मुझे बहुत अपनी सी लगती। धनिया कहीं बहुत अन्दर तक पैठती जा रही थी। आज सोंचती हूँ तो लगता है यह क्या केवल एक व्यक्ति के अन्दर की हलचल थी ? गोदान ने क्या पूरे सामंतवादी युग पर एक पत्थर नहीं फेंका है ? झनझना कर टूट गए हैं शीशमहल। आज हम आर – पार देख सकते हैं। आज कंप्यूटर पर जानकारियों की उपलब्धि के आकड़ों ने किताबों की गर्माहट को सोख लिया है। किताबों की बढ़ती कीमतों ने उन्हें सरकारी पुस्तकालयों में कैद कर दिया है। इस समय के साक्षी हैं हम , लेकिन हम उस वर्ग को भी देख रहे हैं जिनकी बेचैनी किताबें हैं। इन किताबों को ढूंढते हुए वह गली , मोहल्ले की खाक छानता फिरता है। यह वर्ग बहुत बड़ा है और किसी आभिजात्य का मोहताज नहीं है। वह भूखे रहकर भी किताब खरीदता है। यह बेचैनी खत्म होने वाली नहीं है।

फैजाबाद में हमें बंगला नहीं मिल पाया था उसमें दूसरे जज रह रहे थे । रेलवे स्टेशन से कुछ दूर ईदगाह के सामने एक कॉलोनी में हमारा घर था । साल भर मैं ईद का इंतजार करती रहती । मेरी भी जिद नये कपड़े पहनने की होती । सुबह तैयार होकर ईदगाह पर पहुँच जाती । पूरा मेला लगा होता , गुब्बारे , पिपहरिया , लट्टू , कागज की रंग बिरंगी फिरकनियाँ और चारों ओर बच्चे ही बच्चे । ईदगाह के अन्दर बड़े लोग नमाज पढ़ रहे होते । बाहर आने पर सभी गले मिलते । अंतिम ठेले वाले के हटाने पर ही मैं घर लौटती । घर पर भी लोग मिलने आते । दोपहर को मेरी सहेलियाँ रिजवाना , रेहाना और ज़ीनत आ जातीं । मैं बारी – बारी से सभी के घर जाती । सभी के घरों से मुझे बहुत प्यार दुलार और सेवइयाँ मिलतीं । आज तक मैं उन्हें ढूंढ नहीं पाई हूँ लेकिन मुझमें समाई हैं वे सभी और मेरी रचनाओं में आती रहती हैं । मेरे तीसरे कविता संग्रह ‘ खिड़की से आकाश ‘ में ‘ मुक्ति का अर्थ ‘ शीर्षक कविता रिजवाना को संबोधित है । मेरी दो सहेलियों जीनत और सरोज की शादी उसी समय तय हो गई थी । हम लोग आठवीं की परीक्षा दे चुके थे । मेरा किशोर मन विद्रोह कर रहा था । एक रस्म के दौरान जब कहा गया कि दुल्हन की सहेलियाँ और बहनें दूल्हे का शगुन करें । मैंने गुस्से में पूरे कटोरे की चीनी दूल्हे के मुँह पर मल दी थी । जीनत बहुत खूबसूरत थी । उसकी शक्ल अपने अब्बा से मिलती थी । जीनत के अब्बा मुझे बहुत मानते थे । वे ठहाका मार कर हँस पड़े थे और वहाँ बैठे सभी लोग नाराज हो गये थे । मैं और भी उदास हो गई थी । जीनत की बेबस आँखें कभी भूल नहीं पाई हूँ । आज स्त्री विमर्श को लेकर तरह – तरह के प्रश्न उठ रहे हैं । स्त्री संशब्द : विवेक और विभ्रम पुस्तक में हमने स्त्री विमर्श के सभी पक्षों को सामने लाने का प्रयत्न किया है । इसका सम्पादन मैंने कमल कुमार जी के साथ किया है । कक्षा में प्रथम आने वाली रेहाना , सरोज , रिजवाना और जीनत पर असमय गृहस्थी का बोझ क्यों लाद दिया गया ? ऐसे प्रश्नों के हल ढूंढने के लिए हमें ‘ विमर्श ‘ के मंच पर जाना ही होगा ।

एक व्यक्ति जिन्होने मेरे जीवन में अमिट छाप छोड़ी है । वह हैं मेरे नृत्य गुरु पं. कामता प्रसाद मिश्र । मैं उन्हें मास्टर साहब कहती थी। मेरी विधिवत नृत्य शिक्षा ‘ अवध संगीत विद्यालय ‘ फैजाबाद से शुरू हुई । वैसे मैंने गायन में भी सीनियर डिप्लोमा प्रयाग संगीत समिति , इलाहाबाद से किया । मेरे गुरु पं. कामता प्रसाद मिश्र ने कथक नृत्य के प्रति मेरे भीतर ऐसी लगन पैदा कर दी कि मैंने कथक नृत्य की शिक्षा अथक प्रयास से पूरी की । फैजाबाद में कथक में सीनियर डिप्लोमा ‘ प्रयाग संगीत समिति ‘ इलाहाबाद से मान्यता प्राप्त अवध संगीत विद्यालय से पूरा करने के कुछ समय पश्चात पापा का स्थानांतरण बनारस हो गया । मेरी शिक्षा अधूरी रह गई लेकिन बेचैनी बनी रही । इंजीनियरिंग कॉलेज बी. एच. यू. में ‘ बैचलर ऑफ फार्मेसी ‘ करने के दौरान मेंने प्रायवेट ‘ प्रभाकर ‘ प्रयाग संगीत समिति ‘ इलाहाबाद से किया । मेरे मास्टर साहब ने मेरी तैयारी कराई और मुझे प्रथम श्रेणी प्राप्त हुई । बी. एच. यू. में ‘ बैचलर ऑफ फार्मेसी ‘ करने के उपरांत मेरी नियुक्ति राजकीय पोलिटेकनिक में लेक्चरर के पद पर हुई । राजकीय पोलिटेकनिक में लेक्चरर के पद पर मुझे अवकाश नहीं मिला । लगभग चौदह वर्षों के बाद त्याग पत्र देने के और एक पुत्री के जन्म के बाद करनाल से प्रवीण किया । उस समय एम. ए. (प्रवीण) के लिये सैद्धांतिक और क्रियात्मक शिक्षा पं. कामता प्रसाद मिश्र के साथ काशी के प्रसिद्ध नर्तक पं. नन्द किशोर मिश्र से प्राप्त की । करनाल में

मैंने ' टैगोर बाल निकेतन सीनियर सेकेन्डरी स्कूल ' में लड़कियों को कथक नृत्य की शिक्षा दी साथ ही अपना नृत्य स्कूल खोला जिसका नाम ' आम्रपाली ' था। पति का स्थानांतरण दिल्ली हो जाने के कारण उसे भी बन्द करना पड़ा।

विपन्नता में भी समर्पण का चरम भाव मैंने मास्टर साहब पं. कामता प्रसाद मिश्र में देखा। मैं उनकी सबसे प्रिय शिष्या थी। वह मुझे बेटी की तरह मानते थे। घर पर आकर शिक्षा देना उनके अपने हठ के कारण ही संभव हुआ। मेरी माँ प्रगतिशील पर पापा परम्परावादी थे , उस समय मेरे भाई इंटर में पढ़ रहे थे लेकिन मेरी नृत्य शिक्षा उन्हें भी रास नहीं आ रही थी। माँ के कारण विरोध टिक नहीं पाता था। मैं भी पूरे जोर शोर से नृत्य सीखने का ऐलान कर चुकी थी लेकिन यह शर्तें लागू रहीं कि मैं ' पब्लिक परफार्मेंस ' नहीं दूँगी। उस समय मेरी समझ इतनी विकसित नहीं हुई थी कि यह शर्त ' एकलव्य के अंगूठे ' से कम नहीं है। मैं अनुमति पाकर खुश थी। घर में तबला आ गया था। मास्टर साहब ने मेरे घुंघुरू की लड़ियाँ स्वयं गुंथवाईं। मेरे घुंघुरू की लड़ियों में दो – दो घुंघुरू शंभू महाराज के थे। आज भी वह घुंघुरू मेरे पास सुरक्षित हैं। मास्टर साहब के गुरु अच्छन महाराज और शंभू महाराज थे। अच्छन महाराज के पुत्र बिरजू महाराज को उन्होने गोद में खिलाया था। पं. कामता प्रसाद मिश्र की पूरी शिक्षा दीक्षा लखनऊ में गुरुओं की हवेली में हुई थी। मास्टर साहब ने पूरी तन्मयता के साथ मुझे नृत्य की शिक्षा दी। बचपन में मेरे नाज नखरे भी उन्होने खूब उठाये। कभी क्रोध नहीं किया। उनकी दो बेटियाँ कर्मा और निर्मला थीं। कर्मा प्रतिभावान नृत्यांगना थी। गीत गोविन्द के पदों पर हम दोनों साथ – साथ नृत्य करते थे। कर्मा साँवली थी लेकिन नाक नक्श अपने पिता जैसे ही तीखे और सुंदर थे। वह कृष्ण बनती थी और मैं राधा। मास्टर साहब आर्थिक कष्ट में रहते थे। कई ट्यूशन करते थे। माँ के बहुत आग्रह करने पर भी उन्होने कभी फीस नहीं ली। कर्मा को नृत्य सिखाने का अवसर मास्टर साहब को नहीं मिलता था। वह जो भी मुझे सिखाते मैं कापी में कर्मा को टुकड़े , परण लिख कर दे देती। कर्मा अद्‌भुत नृत्यांगना थी। वह बिना हस्तक भाव सीखे ही उन परणों पर ऐसा नाचती थी कि मैं मुग्ध रह जाती थी। मुझे नृत्य करने की अनुमति केवल स्कूल , कॉलेज , पापा के न्यायालय समारोहों और अयोध्या के दिव्यकला कुंज में थी। संत दिव्यकला महाराज से पापा मम्मी ने गुरु दीक्षा ली थी। हर जानकी नवमी को वहाँ मेरा नृत्य कार्यक्रम होता था। कर्मा मेरे साथ नाचती थी। मेरी एकल प्रस्तुति भी होती है। एक बार दिव्यकला महाराज जी के आग्रह पर मेरे मास्टर साहब ने भी नृत्य प्रस्तुत किया था। उस नृत्य की एक – एक भंगिमा से मैं आज भी अनुप्राणित हूँ। मास्टर साहब की विपन्नता मुझे बहुत आहत करती थी। कर्मा और निर्मला मेरे ही स्कूल में पढ़ती थीं। मम्मी प्रिन्सिपल थीं। उन्होने दोनों की फीस माफ कर दी थी। यथासंभव मम्मी सहायता करना चाहती थीं लेकिन स्वाभिमानी मेरे आचार्य मास्टर साहब कुछ ग्रहण नहीं करते थे। मुझे याद है शंभू महाराज दिल्ली में अस्पताल में थे। मास्टर साहब को दिल्ली मिलने के लिये बुलाया था। मास्टर साहब ने मुझे चिट्ठी दिखाई और दो बूंद आँसू चिट्ठी पर लुढ़क गए। ऐसा अद्‌भुत प्रेम। मैं सातवीं कक्षा में थी। वह दिल्ली गए और मैं अपने गुरु की प्रतीक्षा में उनके दिये पाठ भी भूल गई। मन नहीं लगता था। मास्टर साहब प्रसन्न मन लौटे। शंभू महाराज स्वस्थ हो रहे थे। खूब लगन से मास्टर साहब ने मुझे शंभू महाराज की प्रिय ' नटवर परण ' सिखाई।

बहुत बाद में दिल्ली के ‘ जनसत्ता ‘ अखबार मे मैं लगातार लिख रही थी। मेरे फीचर , कहानियाँ , साक्षात्कार बराबर प्रकाशित हो रहे थे। मैंने ‘ मंगलेश जी ‘ से बात की और बिरजू महाराज का साक्षात्कार लेने पहुंची । मैंने अपना परिचय पत्रकार के रूप में दिया लेकिन मेरे प्रश्नों से उन्होने भाँप लिया । मैंने मास्टर साहब की याद दिलायी। वह भावुक हो उठे “ कहाँ हैं कामता भैया ?” उन्होने ‘ कथक केन्द्र ‘ दिल्ली में उन्हें बुलाने का आश्वासन दिया । मैंने उनका पता लगाया । मास्टर साहब गरीबी और बीमारी से असमय ही दिवंगत हो गए थे । कर्मा की शादी हाई स्कूल के बाद ही कहीं गाँव में हो गई थी । निर्मला संगीत की शिक्षिका बन गई थी । मास्टर साहब की स्मृति मेरे मानस पर अंकित स्थाई भाव है। मेरे पहले कहानी संग्रह ‘ पलाश वन के घुंघुरू ‘ की शीर्षक कहानी के नेपथ्य में मास्टर साहब का आदर्श , विपन्न जीवन है । नृत्य के प्रचार प्रसार का मास्टर साहब का स्वप्न मैं पूरा न कर सकी । मेरी कहानियों ने कलाकारों की पीड़ा को स्वर अवश्य दिये हैं। इसी विषय पर एक उपन्यास अभी अधूरा है।

फैजाबाद में ही मेरे प्रश्न बड़े होने लगे थे। सोंचने की दिशा बदलने लगी थी। मैं बार – बार बचपन को पकड़ना चाह रही थी लेकिन बचपन मुझसे छूट रहा था। फैजाबाद ही वह शहर है जहाँ मेरे बचपन ने मुझसे विदा ली। सृजन में चुपके से आ जाता है बचपन। मेरी रचनाओं के बीच से झाँकता रहता है मेरा बचपन।

****